इकाई 3 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि (भाग एक)

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 नाट्यमण्डप निर्माण विधि

- 3.3.1 भूमिशोधन
- 3.3.2 विभाजन
- 3.3.3 स्थापन
- 3.3.4 भित्तिकर्म
- 3.3.5 स्तम्भ कर्म
- 3.3.6 स्तम्भों के देवता

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.7 बोध प्रश्न

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको :

- रंगमंच (नाट्यमण्डप) के निर्माण विधि से उसके अपेक्षित सावधानियों का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच के निर्माण विधि का बोध हो सकेगा।
- रंगमंच के विविध पक्षों के विषय में जानकारी हो सकेगी।
- रंगमंच के निर्माण विधि में अपेक्षित सावधानियों के विषय स्पष्ट हो सकेंगे।
- विषयगत सामग्री के रूप में अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों का भी प्रस्तुतिकरण हो सकेगा।

3.2 प्रस्तावना

रंगमंच (नाट्यमण्डप) का निर्माण बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। इसलिए उसके निर्माण में बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। यथा रंगमंच का निर्माण कहाँ, कैसे और किस रूप में किया जाय कि वह अभिनय एवं दर्शन दोनों के अनुकूल हो। जिसके लिए भूमिशोधन, विभाजन, स्थापन, भित्तिकर्म, स्तम्भ, देवता, आदि का विधान किया जाता है। इनके विधिवत परिपालन से ही रंगमंच के वैशिष्ट का बोध होता है। इसलिए नाट्यशास्त्री ग्रन्थों के आधार पर उपयुक्त विषय को इस इकाई के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.3 नाट्यमण्डप निर्माण विधि

हमारे यह नाट्यमण्डप निर्माण विधि को बहुत असाधारण कार्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका निर्माण कार्य शास्त्रीय के साथ सांस्कृतिक भी हैं नाट्याचार्य नाट्यमण्डप निर्माण विधि को सामाजिक की ही दृष्टि से स्थापित करता है क्योंकि यह अभिनेताओं के साथ–साथ सामाजिक से ही विशेष रूप से सम्बन्धित है। इसलिए इसके निर्माण विधि के विषय में आचार्य भरत कहते हैं–

श्रूयतां तद्यथा यत्र कर्त्तव्यो नाट्यमण्डपः।
तस्य वास्तु च पूजा च यथा योज्या प्रयत्नतः।। (ना.शा. 2/6)

अर्थात् जिस प्रकार से नाट्य मण्डप का निर्माण करना चाहिए और उसके वास्तु यानि नाट्यगृह के भूमि आकार परिमाण आदि तथा पूजा प्रयत्नपूर्वक जैसा करना चाहिए उसे सुनिये। भारतीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक कार्य में पूजा विधि अनिवार्य कर्म के रूप मानी जाती है जिसका निर्वाह नाट्यमण्डप निर्माण में भी किया जाता है। पूजा के अनन्तर वे निर्माण विधि का उपदेश देंगे। कहने का भाव यह है कि आचार्य भरत नाट्यगृह निर्माण विधि को बताने जा रहे हैं। उसी का क्रमशः विधान किया जा रहा है।

3.3.1 भूमिशोधन

नाट्यमण्डप का निर्माण जिस भूमि पर होता है उसका समुचित देखरेख आवश्यक है इसलिए नाट्यमण्डप निर्माण के लिए भूमि शोधन अनिवार्य कर्म है। आचार्यभरत ने नाट्य निर्माण के सम्बन्ध में सर्वप्रथम भूमिशोधन का उल्लेख करते हुए कहा है–

भूमेर्विभागं पूर्वं तु परीक्षेत प्रयोजकः।
ततो वास्तु प्रमाणेन प्रारभेत शुभेच्छया।। (ना.शा. 2/29)

अर्थात् नाट्यकर्ता को सर्वप्रथम भूमिखण्ड की परीक्षा (विभाग) करनी चाहिए। तदनन्तर वास्तुशास्त्र के प्रमाण के अनुसार शुभ की इच्छा से वास्तु का निर्माण कार्य करें। यहाँ विभाग पद से भूमि की हेयता और उपादेयता का ग्रहण होता है। कहने का भाव यह है कि कौन सी भूमि त्याज्य है और कौन सी भूमि ग्राह्य करने योग्य है। इसका विचार करके ही नाट्यमण्डप का निर्माण कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। भूमिशोधन के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

प्रथमं शोधनं कृत्वा लाङ्गलेन समुत्कृषेत्।
अस्थिकीलकपालानि तृणगुल्मांश्च शोधयेत।। (ना.शा. 2/31)

अर्थात् सबसे पहले भूमिशोधन करके हल से जोते और हड्डी, कील, खपड़ एवं घास–फूसों को निकाल दे। शोधन से तात्पर्य नाट्यमण्डप स्थल की साफ–सफाई से है। नाट्यमण्डप का स्थल स्वच्छ होना चाहिए। यह मानुषी और दैवी दोनों कार्य हैं इसलिए नाट्यमण्डप का स्थान सब प्रकार से उत्तम होना चाहिए।

3.3.2 विभाजन

आचार्य भरत नाट्यमण्डप निर्माण के क्रम में भूमि विभाजन की भी बात करते हैं। किस भूमि पर नाट्यमण्डप को बनाना उचित होगा उसका ठीक प्रकार से निर्धारण करना

भूमि विभाजन कहलाता है। जिसके सम्बन्ध में 'नाट्यशास्त्र' में कहा गया है–

समा स्थिरा तु कठिना कृष्णा गौरी च या भवेत्।
भूमिस्तत्रैव कर्त्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः।। (ना.शा. 2/30)

अर्थात् जो भूमि समतल, स्थिर, कठोर, काली अथवा गौर वर्ण की उसी भूमि पर नाट्यगृह–निर्माताओं को नाट्यमण्डप बनाना चाहिए। यहाँ समा पद का आशय स्वभाव में अधिक ऊँची या अधिक नीची न होना है। स्थिर का अर्थ अचल स्वभाव वाला है। कठिना का अर्थ है जो भूमि ऊसर न हो। कृष्णा भूमि गौरा च पद वा (अथवा) अर्थ में प्रयुक्त है। दूसरे लोग इसका अर्थ तो काली एवं गौरी मिश्रित भूमि को करते हैं। कर्त्तव्यः पद का अर्थ करने योग्य बताया गया है।

3.3.3 स्थापन

नाट्यशास्त्र में नाट्यमण्डप की स्थापन विधि भी बताया गया है जिसका उद्देश्य नाट्यमण्डप के उद्देश्य और निर्विघ्न कार्य समाप्ति से है। यहाँ बताया गया है कि शुभ नक्षत्रों के योग में ही नाट्यमण्डप की स्थापना करनी चाहिए। शंख, दुन्दुभि के घोष के साथ मृदंग एवं पणव आदि सभी प्रकार के बाजों को बजाते हुए नाट्यमण्डप आधारशिला की स्थापना करनी चाहिए। साथ ही आचार्य भरत मुनि कहते हैं–

सर्वातोद्यैः प्रणुदितैः स्थापनं कार्यमेव तु।
उत्सार्याणि त्वनिष्टानि पाषण्डयाश्रमिणवस्था।। (ना.शा. 2/43)

अर्थात् नाट्यमण्डप स्थापना के समय अनिष्टकारी वस्तु पाखण्डियों, सन्यासियों, गेरुआ वस्त्रधारियों और लूले–लंगड़े लोगों को दूर भगा देना चाहिए। पुनः आचार्य भरत कहते हैं कि रात्रि में नाना प्रकार के भोजनों से युक्त तथा गन्ध, पुष्प, फल आदि से युक्त दशों दिशाओं में बलि देनी चाहिए। पूर्व दिशा में सफेद अन्न से युक्त, दक्षिण में नीले रंग का अन्न, पश्चिम में पीला अन्न और उत्तर दिशा में लाल रंग के अन्न की बलि देनी चाहिए। जिस दिशा में जिस प्रकार के देवता की कल्पना की गई है उस दिशा में उसी प्रकार की बलि मन्त्रों के साथ देनी चाहिए। साथ ही नाट्यमण्डप की स्थापना के समय ब्राह्मणों को घृत मुक्त पायस (खीर) और राजा को मधुपर्क तथा नाट्यकर्त्ताओं को गुड़युक्त चावल अर्थात् मीठा चावल खिलाना चाहिए। विद्वानों के द्वारा मूल नक्षत्र में अनुकूल मुहूर्त, तिथि एवं शुभकरण में नाट्यमण्डप की स्थापना करनी चाहिए। यह सभी कार्य नाट्य मण्डप निर्माण में विघ्न विघातक के रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

3.3.4 भित्तिकर्म

नाट्यमण्डप का मुख्य आधार भित्ति ही होती है। इसी भित्ति में स्तम्भ, नागदन्त, वातायन तथा द्वार आदि की रचना होती है। जिसके निर्माण के विषय में नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

एवं तु स्थापनं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत्। (ना.शा. 2/49)

अर्थात् नाट्यमण्डप की स्थापना के बाद भित्तिकर्म करना चाहिए। भित्ति ऐसी हो जिसमें वातायन छोटे हो। आचार्य भरत ने भित्ति प्रसाधन का अत्यन्त कलात्मक और परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है। भित्ति कर्म के अन्तर्गत ही भित्ति लेप, सुधाकर्म भी आता है। अभिनवगुप्त के मत में भित्ति लेप का कार्य शंख, बालू और सितुहा आदि के चूर्ण

से होना चाहिए। नाट्यशास्त्र में यह भी बताया गया है कि नाट्यमण्डप की भित्ति चारों और से श्लिष्ट ईटों से बनी हो।

3.3.5 स्तम्भ कर्म

आचार्य भरत ने दृढ़ नाट्यमण्डपों की रचना के लिए भित्तियों के साथ स्तम्भों की स्थापना एवं रचना कर्म को स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया कि स्तम्भ की स्थापना शुभ समय में ही करना चाहिए–

तिथिनक्षत्रयोगेन शुभेन करणेन च।
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं रोहिण्या श्रवणेन।। (ना.शा. 2/50–51)

अर्थात् शुभतिथि नक्षत्र एवं करण का योग होने पर रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्र में स्तम्भों की स्थापना करनी चाहिए। स्तंभ स्थापन की विधि प्रसंग में चारों वर्णों के स्तम्भों के मूल में स्वर्ण, रजत, ताम्र और लौह आदि धातुओं के रखने का विधान है। भारतीय परम्परा किसी भी कार्य के लिए शुभ समय का अत्यधिक महत्त्व होता है। एतदर्थ यहाँ स्तम्भ कर्म में भी रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्त को उपयुक्त माना गया है। जिसका एक वैज्ञानिक कारण भी है कि इस नक्षत्रों में वातावरण नाट्यमण्डप कर्म के अनुकूल होता है। नाट्यमण्डपों के स्तंभों की संख्या भी बतलाई गयी है। आचार्य भरत के अनुसार चतुरस्र नाट्यमण्डप के लिए केवल 24 स्तंभों की आवश्यकता होती है जिनमें दस स्तंभ तो प्रेक्षागृह में सोपानाकृति आसनों के बाहर होंगे। शेष छः स्तंभ पूर्व स्थापित स्तंभों से चार–चार हाथ के अन्तर पर दक्षिण और उत्तर की ओर होने चाहिए। इन सोलह स्तंभों के अतिरिक्त शेष आठ स्तंभों की स्थापना भी स्थापना करनी चाहिए जिन पर आठ हाथ के स्तंभ रखे हों। आचार्य भरत के अतिरिक्त अभिनवगुप्त, शंकुक भट्टलोल्लट आदि भी स्तम्भ संख्या एवं रचना विधान को प्रस्तुत किये हैं। स्तंभ स्थापना के समय अनेक प्रकार की पूजा पद्धति तथा दान की भी बात कही गयी है–

रत्नदानैः सगोदानैर्वस्त्रदानैरनल्पकैः।
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा तु स्तम्भानुत्थापयेत्ततः।। (ना.शा. 2/61–62)

अर्थात् पर्याप्त मात्रा में रत्नदान, गोदान और वस्त्रदान के द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त करके तब स्तम्भों का उत्थापन करें यानि खड़ा करें। स्तंभ स्थापना में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र के कार्य भी निर्धारित किया गया है। उत्थापन के समय स्तम्भों को अचल, कम्पन रहित और अविचलित होना चाहिए क्योंकि स्तंभों के उत्थापन में ये दोष कहे गये हैं। स्तम्भ के चलन अर्थात् खिसक जाने पर अनावृष्टि होती है उसी स्थान पर घूम जाने से मृत्युभय होता है और कम्पन होने पर शत्रुपक्ष से भयंकर भय होता है। इन दोषों से रहित शिव अर्थात् मंगलकारी स्तम्भ खड़ा करें। स्तंभ का निर्माण शिल्पशास्त्र को जानने वाले के द्वारा ही होना चाहिए। स्तंभ की रचना सूर्योदय के समय उत्तम मानी गयी है। स्तंभों के प्रसाधान के सम्बन्ध में अभिनवगुप्त का मानना है कि ये स्तंभ परस्पर आठ हाथ की दूरी पर न हो। ये स्तंभ मण्डप तथा शहतीर धारण करने के कारण दृढ़ तो हों ही पर उन पर पुत्तलिकाओं के मनोहर चित्र भी अंकित हों जिससे नाट्यमण्डप की सुन्दरता और सुरुचि का वातावरण उपस्थित हो। यह स्तंभ विधान तो विशेष रूप से चतुरस्र नाट्यमण्डप के लिए होता है परन्तु विकृष्ट नाट्यमण्डप का आकार बड़ा होने से उसमें अधिक स्तम्भों की आवश्यकता होती है। अभिनवगुप्त ने भी यह स्पष्ट कर दिया है कि 24 स्तम्भ तो षड्दारुक पर स्थापित

स्तम्भों के अतिरिक्त हैं। इसलिए चतुरस्र में अट्ठाइस तथा विप्रकृष्ट में उससे भी अधिक स्तम्भों की स्थापना होती है। त्र्यस्र नाट्यमण्डप के स्तम्भों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। आचार्य शङ्कुक तथा भट्टलोल्लट आदि स्तम्भों की संख्या आठ मानते हैं। आचार्य भरत मुनि दश और छः स्तम्भों के अतिरिक्त पुनः आठ स्तम्भों में स्थापित करने की बात करते हैं किन्तु उन्होंने उसके स्थान का निर्देश नहीं किया है।

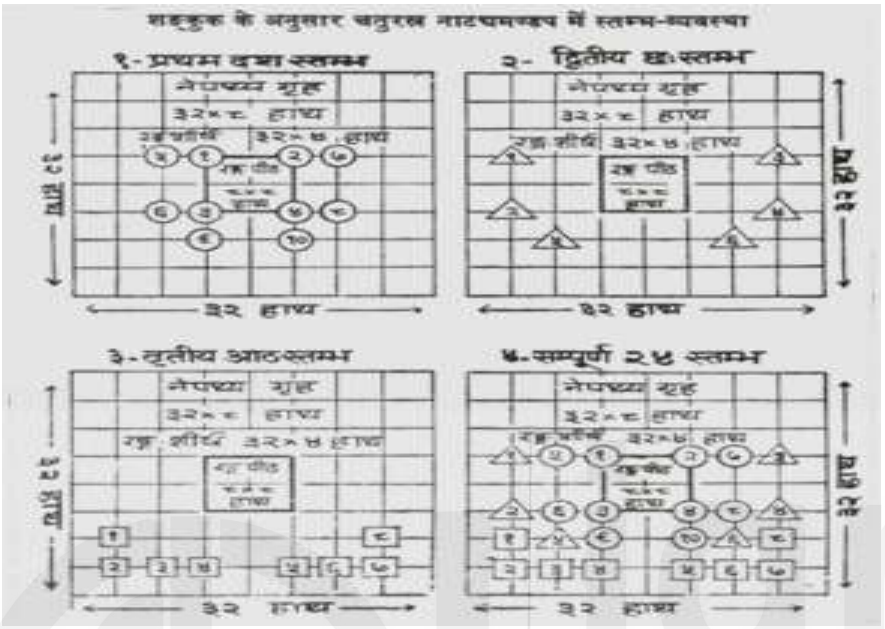

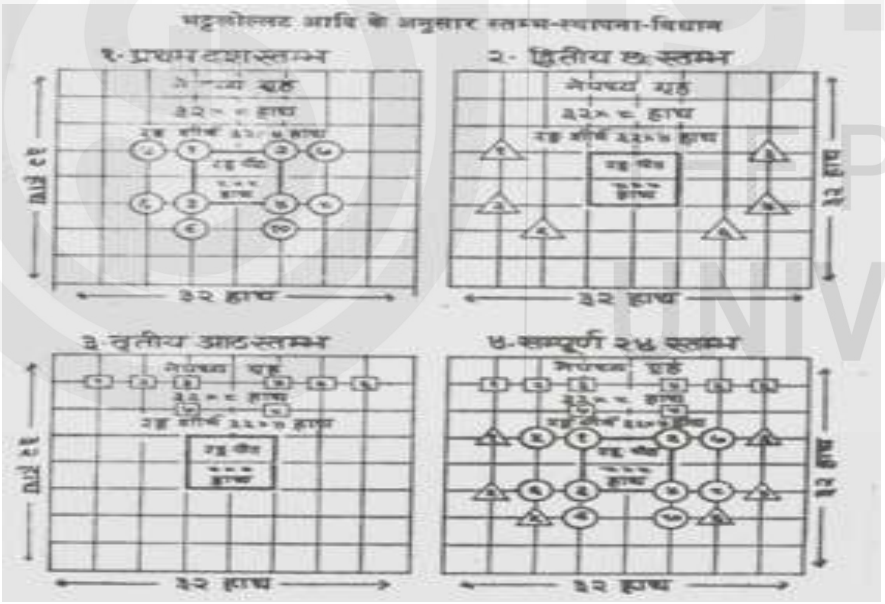

आचार्य शङ्कुक ने उन आठ स्तम्भों के स्थापना का निर्देश करते हुए लिखा है कि दक्षिण भित्ति के उत्तर की ओर तीन और दक्षिण में पूर्व स्थापित स्तम्भ के दक्षिण की ओर दोनों से चार हाथ की दूरी पर स्तम्भ स्थापित करें। उसी प्रकार उत्तर की भित्ति से दक्षिण की ओर उत्तर से पूर्व स्थापित स्तम्भ से तथा उत्तर भित्ति से चार हाथ की दूरी पर एक स्तम्भ स्थापित करें। तदनन्तर पूर्व भित्ति से चार–चार हाथ की दूरी पर रंगपीठ के दोनों भाग में दो–दो स्तम्भ स्थापित करें। पुनः उसके बाद उनसे भी चार–चार हाथ की दूरी पर दो स्तम्भ और खड़ा करें। इस प्रकार स्तम्भों की कुल संख्या आठ हो जाती है। अतः शंकुक के मत में $10 \times 6 \times 8 = 24$ स्तम्भ नाट्यमण्डप के भीतर स्थापित किये जाते है और चार स्तम्भ नाट्यमण्डप के बाहर होते हैं। जिससे कुल स्तम्भों की संख्या अट्ठाइस हो जाती है। आचार्य भट्टलोल्लट प्रदत्त सोलह

स्तम्भ की स्थापना समान ही मानते हैं। किन्तु आठ स्तम्भों की स्थापना के सम्बन्ध में उनका मानना है कि ये आठों स्तम्भ नेपथ्यगृह से सम्बन्धित है। इनका कहना है कि प्रेक्षकों के बैठने के स्थान में स्तम्भों को खड़ा करने से स्थान की कमी हो जाती है। प्रेक्षकों को दृश्य देखने में भी असुविधा होती है। इसलिए भट्टलोल्लट ने आठ स्तम्भों को नेपथ्यगृह में खड़ा करने के लिए कहा है। उनके मतानुसार नेपथ्यगृह के दक्षिण–भित्ति के मध्य से उत्तर की ओर चार हाथ की दूरी पर प्रथम स्तम्भ खड़ा करें, उस स्तम्भ के उत्तर की चार हाथ की दूरी पर दूसरा स्तम्भ और उससे भी चार हाथ की दूसरी पर उत्तर में तीसरा स्तम्भ खड़ा करें। इसी प्रकार उत्तर–भित्ति के मध्य भाग से दक्षिण की ओर चार–चार हाथ की दूरी पर तीन स्तम्भ स्थापित करें। पुनः नेपथ्य के तीसरे और चौथे स्तम्भ से चार–चार हाथ की दूरी पर रंगशीर्ष से सटे हुए दो स्तम्भों को स्थापित करें। इस प्रकार भट्टलोल्लट का आठ स्तम्भ अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

3.3.6 स्तम्भों के देवता

नाट्यशास्त्र परम्परा में स्तम्भों के देवता होते हैं क्योंकि यही स्तम्भ नाट्यमण्डप के भार का वहन करते हैं। आचार्य भरत के अनुसार स्तम्भ चार प्रकार के होते है जिसका नाम उल्लेख नाट्यशास्त्र में इस प्रकार मिलता है–

सर्वं रक्तं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च गुडौदनम्।
वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो दिग्भागे पश्चिमोत्तरे।।
सर्वं पीतं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च घृतौदनम्।
शुद्रस्तम्भे विधिः कार्यः सम्यक्पूर्वोत्तराश्रये।।
नीलप्रायं प्रदातव्यं कृसरं च द्विजाशनम्। (ना.शा. 2/55–57)

अर्थात् पश्चिम और उत्तर दिशा वायव्य कोण में स्थापित वैश्यस्तम्भ पर सारी विधियां पीत वर्ण की होनी चाहिए और ब्राह्मणों को घी–चावल देना चाहिए। पूर्व और उत्तर दिशा के मध्य ईशान कोण में स्थापित शूद्र स्तम्भ पर समस्त विधान प्रायः नील वर्ण के पदार्थों से अच्छी तरह करनी चाहिए और ब्राह्मणों को खिचड़ी खिलानी चाहिए। इस प्रकार यहाँ दिशा का महत्त्व प्रतिपादित है। दिक्पालों की ही पूजा यहाँ होती है। यदि रंगों की बात की जाय तो लाल रंग ब्रह्मा, पीला रंग विष्णु, सफेद रुद्र, काला इन्द्र या यम, आदि के रूप में स्वीकार किया जाता है। नाट्यमण्डप तैयार हो जाने पर देवों की पूजा की जाती है। नान्दी में भी देव स्तुति या देवता स्तुति मिलती है।

3.4 सारांश

रंगमंच के निर्माण की विधि एवं सावधानी को ही मुख्यरूप से इस इकाई के अन्तर्गत प्रतिपादित किया गया है। जिसमें नाट्यमण्डप के निर्माण विधि के साथ भूमिशोधन विभाजन, स्थापन, भित्तिकर्म, स्तम्भकर्म, स्तम्भ के देवता आदि को स्पष्ट किया गया है। ये सभी तत्त्व नाट्यमण्डप के निर्माण और महत्त्व को सिद्ध करते हैं। ये सभी रंगमंचीय व्यवस्था के जनक हैं। रंगमंच के निर्माण में वास्तु अर्थात् नाट्यगृह के भूमि, आकार, परिमाण आदि पूजा इत्यादि के साथ करना चाहिए। इस प्रक्रिया के द्वारा एक सुव्यवस्थित रंगमंच का निर्माण सम्भव हो पाता है। जिसका रंगमंच के निर्माण में

जानना आवश्यक होता है इसीलिए आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में निर्माण रंगमंच की विधि का प्रतिपादन किया है।

3.5 शब्दावली

भूमिशोधन – पृथ्वी का शोधन अर्थात् भूमि का परिष्कार।

विभाजन – नाट्यमण्डप के भूमि के आकार–प्रकार का सम्यक निर्धारण एवं उपयुक्त भूमि पर नाट्यमण्डप बनाने का निर्णय लेना विभाजन के अन्तर्गत आता है।

स्थापन – नाट्यमण्डप की स्थापना यानि निर्माण करना स्थापन कहलाता है।

भित्तिकर्म – नाट्यमण्डप को तैयार करने के लिए भित्ति (दिवाल) का निर्माण भित्ति कर्म कहलाता है।

स्तम्भ – नाट्यमण्डप का मुख्य आधार स्तम्भ होता है।

3.4 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009
4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससंस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008
7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018
8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017
9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

3.5 बोध प्रश्न

1. रंगमंच के निर्माण में अपेक्षित सावधानियों का वर्णन कीजिए।
2. रंगमंच की निर्माण कैसे और कब किया जाना चाहिए?
3. भित्तिकर्म के विषय में प्रकाश डालिए।
4. स्तम्भ स्थापना की विधि स्पष्ट कीजिए।
5. स्तम्भ देवता एवं स्थापना विधि का वर्णन कीजिए।